CHETANA
International Journal of Education
(CIJE)
Peer Reviewed/Refereed Journal
(ISSN: 2455-8729 (E) / 2231-3613 (P))
Impact Factor
SJIF 2023 - 7.286

आलेख

Received 20.01.2023 Reviewed 28.01.2023 Accepted 04.03.2023

ऑनलाइन जिन्दगी : एक समाजशास्त्रीय विमर्श

* डॉ. ज्योति सिडाना

मुख्य शब्द - *आभासी दुनिया, सीमित व्यक्तित्व, कृत्रिम बुद्धि, न्यू डोमेस्टिक टैक्नोलॉजी, खुशहाली सूचकांक* ***आदि.***

सार संक्षेप

सूचना तकनीक के तीव्र विकास ने मानव जीवन को पूरी तरह से बदल दिया है जिसके कारण सामाजिक संबंध भी नए स्वरुप में उभर कर आये हैं। इस तकनीक ने आभासी संबंधो (सोशल मीडिया पर बनने वाले संबंध) के जाल को तो व्यापक किया है परन्तु आमने–सामने के भावनात्मक संबंधों को सीमित कर दिया है। फिर भले ही वह माता–पिता, दादा–दादी, भाई–बहिन या मित्रों के ही संबंध क्यों न हों। इसके कारण हर व्यक्ति बच्चा हो या युवा या फिर वृद्ध सभी भीड़ में भी अकेलेपन को जी रहे हैं। परिवार में रहते हुए भी एक दूसरे का साथ नहीं अनुभव करते। कहते हैं कि कुछ सालों में दुनिया बहुत बदल गयी है परंतु पेड़ों ने फल और छाया देना नहीं छोड़ा, पानी ने शीतलता नहीं छोड़ी, बादलों ने बरसना नहीं छोड़ा, मौसम ने अपना स्वभाव नहीं बदला आखिर फिर बदला क्या? हाँ बदला, केवल इन्सान की इंसानियत बदल गयी बाकी सब वैसा है। मशीनों के साथ रहते–रहते मनुष्य को लगने लगा कि वह अकेला जी सकता है, खुश रह सकता है उसे किसी और के साथ की जरुरत नहीं। पर वह भूल गया है कि मनुष्य को सामाजिक संबंधों के कारण ही सामाजिक प्राणी कहा जाता है और बिना इन संबंधों के वह जी तो सकता है पर खुश नहीं रह सकता। संभवतः इसलिए खुशहाली सूचकांक (Happiness Index) में हमारा स्तर साल दर साल गिरता जा रहा है।

लेख परिचय

सूचना क्रांति और तकनीकी विकास ने एक कृत्रिम दुनिया (artificial world) को उत्पन्न किया है। एक ऐसी दुनिया जहाँ कुछ भी वास्तविक नहीं है यानी सब कुछ आभासी है। कृत्रिम समाज, कृत्रिम मनुष्य, कृत्रिम संबंध, कृत्रिम भावनाएं, कृत्रिम बुद्धि, कृत्रिम सुन्दरता यहाँ तक कि कृत्रिम जीवन, कृत्रिम सांसे और कृत्रिम हंसी। इस तरह की बनावटी वस्तुओं के साथ रह–रह कर मनुष्य वास्तविक जीवन जीना ही भूल गया है। इस आभासी दुनिया में हर चीज अस्थायी है यहाँ तक कि सामाजिक और निकट के संबंध भी अस्थायी और बनावटी होते जा रहे हैं। जब तक उपयोगी हैं इन संबंधों को प्रयुक्त करों जब जरुरत न रह जाए इन्हें समाप्त कर दो। कंप्यूटर के एक क्लिक की तरह सब कुछ बहुत ही आसान हो गया है। एक क्लिक पर मनचाही चीजे आपके पास पहुँच जाती हैं। यह कह सकते हैं कि नवींन टेक्नोलॉजी (कंप्यूटर/स्मार्ट फोन) आधुनिक दुनिया का जिन हैं जो इच्छा जाहिर करते ही अपने आका का हुक्म पूरा करने को तैयार रहता है। अंतर केवल इतना है कि वो जिन दादी–नानी की कहानियों में होता था और आधुनिक जिन वास्तविक दुनिया का हिस्सा है।

समाज वैज्ञानिक हेबरमास मानते हैं कि विज्ञान और प्रौद्योगिकी में हुई अप्रत्याशित प्रगति के कारण मानव की तार्किकता का महत्त्व दिन–प्रतिदिन घटता जा रहा है। अब मनुष्य की तार्किकता उन्हें लक्ष्यों की ओर बढ़ने के लिए प्रेरित नहीं करती अपितु केवल साधनों को एकत्र करने में सहायता करती है। परिणामस्वरूप मनुष्य द्वारा निर्मित आधुनिक तकनीक ने स्वयं मनुष्य को ही अपना

गुलाम बना लिया है। दुर्भाग्य तो यह है कि आधुनिक मनुष्य स्वयं को पूर्व की तुलना में अधिक स्वतंत्र मानता है जबकि वह तो पहले से भी कहीं अधिक पराधीन हो गया है। इसलिए हेबरमास का यह तर्क एक सीमा तक सच प्रतीत होता है कि विज्ञान और प्रौद्योगिकी मनुष्य के दमन और शोषण के लिए उत्तरदायी है। ऐसे कई उदाहरण समाचारपत्रों में छपी खबरों में पढ़ने को मिलते हैं जैसे एक 17 वर्षीय नाबालिग पिछले एक साल (कोविड–19 के दौरान) से पढ़ने की जगह ऑनलाइन गेम फ्री–फायर खेल रहा था और माँ को मोबाइल की ज्यादा जानकारी नहीं थी और उसके पिता किसी दूसरे शहर में काम करते थे। घर में सबको लगता कि उनका बच्चा ऑनलाइन क्लास ले रहा है जबकि वह गेम में 75000 रूपए हार गया और कर्ज नहीं चुकाने पर कर्जदार ने उसकी हत्या कर दी। इसी तरह की एक दूसरी घटना में रायसिंह नगर के एक गांव में 12 साल के लड़के ने 6 साल की अपनी बहन का बलात्कार किया। जांच के दौरान पता चला कि बच्चा मोबाइल फोन पर अश्लील वीडियो देखा करता था। मोबाइल पर पढ़ाई करते–करते ही उसे अश्लील वीडियो का लिंक आया जिस पर उसने अनजाने में क्लिक कर दिया। इसके बाद से वह पोर्न वीडियो देखने का आदी हो गया और उसने इस घटना को अंजाम दिया।

अनेक मनोवैज्ञानिकों द्वारा किए गए अध्ययनों से भी यह पता चलता है कि बच्चों द्वारा दिन में कई घंटों तक मोबाइल या लैपटॉप के साथ समय बिताना चिंता और अवसाद को उत्पन्न करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। उनका कहना है कि स्मार्टफोन का अधिक प्रयोग बच्चों में सृजनशीलता और उत्सुकता को कम कर रहे हैं वे इस बात से अनभिज्ञ रहते हैं कि उनके आसपास क्या हो रहा है। जोकि न केवल उनके शारीरिक अपितु मानसिक स्वास्थ्य के लिए भी नुकसानदायक है। कोविड–19 के बाद से तो इस समस्या ने और भी विकराल रूप धारण कर लिया है। रेस्तरां हो या शॉपिंग मॉल या फिर ट्रेन में यात्रा करते समय आप देखेंगे कि बहुत से बच्चे अपने आस–पास होने वाली किसी भी चीज को नोटिस नहीं करते हैं क्योंकि वे अपने स्मार्टफोन और टैबलेट पर केंद्रित होते हैं। पूर्व में जब ट्रेन में यात्रा करते थे तो सभी अपने सह–यात्रियों से बातें करके समय बिताते और यात्रा का आनंद लेते थे। यहाँ तक कि कोई यात्री सोना भी चाहे तो सहयात्रियों और बच्चों का शोर, हँसी के ठहाके सोने नहीं देते थे परन्तु अब छोटे हो या बड़े सभी स्मार्ट फोन तक सिमट कर रह गए हैं ऐसे में कुछ दूर का सफर भी कई गुना लम्बा लगता है। जीवन के हर पक्ष से स्वाभाविकता समाप्त होती जा रही है या कहें कि लगभग समाप्त ही हो गयी है। ऐसे में खुशहाली का स्तर गिरना भी स्वाभाविक ही है। अब डॉक्टर्स को अपने मरीजों को सुझाव देना पड़ता है कि अगर स्वस्थ रहना है तो सुबह उठकर पार्क में जाकर हँसी के ठहाके लगाओं या लाफ्टर क्लब ज्वाइन करो। यही तो बाजार है जहाँ हर वो चीज बिक रही है जो कभी मुफ्त हुआ करती थी सांसे (ऑक्सीजन), पानी, भावनाएं और अब हंसी भी। अगर अब भी बुद्धिजीवी नहीं चेते और इस विषय पर चिंतन नहीं किया गया तो बाजार समाज को मूर्त रूप मिलने से या समाज के बाजारीकरण की संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता। और साथ ही उपर्युक्त घटनाओं की पुनरावृत्ति और वृद्धि को रोकना भी नामुमकिन सा होगा।

इसमें संदेह नहीं है कि प्रौद्योगिकी ने विश्व को व्यापक पैमाने पर खोल दिया है परंतु प्रत्यक्ष अनुभवों का कोई विकल्प नहीं होता जिससे आज के बच्चे तेजी से वंचित होते जा रहे हैं। आज बच्चे स्मार्ट फोन पर ज्यादा समय बिताते हैं जिसके कारण प्रौद्योगिकी ने 'आउट डोर' गतिविधियों को 'इन डोर' गतिविधियों से विस्थापित कर दिया है जिसका प्रभाव न केवल उसके शारीरिक स्वास्थ्य पर पड़ा है अपितु बच्चों में निराशा एवं कुंठा की भावना भी बढ़ती जा रही है। यह घटनाएँ कोरोना महामारी में और भी बढ़ी हैं क्योंकि अब तो घर में रहना बाध्यता भी है। प्रौद्योगिकी के बढ़ते दायरे के कारण एक भयावह परिणाम जो सामने आया वह है बच्चों में 'सामाजिकता' की समाप्ति (End of Social) हो रही है, उनमें व्यक्तिवादिता की प्रवृत्ति बढ़ रही है, वे चुनौतियों का सामना करने के बजाए पलायनवादी (Escapist) बन रहे हैं।

एम. मुनरो का मत है कि आधुनिकता के विभिन्न पक्षों ने विशेषतः मीडिया की भूमिका ने बच्चों को 'सीमित व्यक्तित्व' (confined personality) बना दिया है अर्थात् ऐसा व्यक्तित्व जो सामाजिक रूप से पृथक, आत्मकेन्द्रित, अन्तर्मुखी, भावनात्मक शून्य और काल्पनिक एवं मिथ्या विश्वासों से निर्मित अपने छोटे से विश्व में रहना पसंद करता है। यह सच है कि मनोरंजन के नवीन साधनों ने बच्चों के 'ज्ञान' व 'सूचना' के विश्व को काफी व्यापक बनाया है लेकिन इस बात को भी नहीं नकारा जा सकता कि उन्हें परिवार एवं अनौपचारिक विश्व की जीवन–शैली से पृथक भी किया है। आर. मैडीगन इन्हें 'न्यू डोमेस्टिक टैक्नोलॉजी' की संज्ञा देते हैं जो बच्चों के समाजीकरण का एक मुख्य अभिकरण बना है। आज बच्चे परिवार और समाज से उतना नहीं सीख रहे जितना वे मीडिया एवं कम्प्यूटर के द्वारा सीख रहे हैं जिसकी सत्यता–असत्यता को परखना उनके लिए बहुत मुश्किल है इसलिए वे मीडिया/सोशल

मीडिया की हर घटना/सूचना को सत्य मान लेते हैं। प्रौद्योगिकी ने भौगोलिक दूरी भले ही समाप्त कर दी हो लेकिन सामाजिक दूरी को गहरा कर दिया है जिसके कारण लोग भावनाशून्य होते जा रहे हैं। प्रौद्योगिकी निर्देशित समाज ने नए प्रतिमानों एवं मूल्यों को निर्मित किया है जहाँ केवल "मैं" महत्वपूर्ण है और दूसरे लोग हाशिए पर नजर आते हैं। सभी ने अपना एक आभासी समाज (virtual society) या आभासी समुदाय (virtual community) निर्मित कर लिया है जो उनके समुदाय को लाइक और शेयर करता है केवल वही उनके उस समूह का हिस्सा बन सकता है। समाज वैज्ञानिक स्कॉट लैश तर्क देते हैं कि प्रौद्योगिकीय क्रांति ने सामाजिक संबंधों को नवीन अर्थ दिए हैं और मनुष्य को मशीनीकृत जीवन का भाग बनने के लिए बाध्य किया है। परिणामस्वरूप वास्तविक, काल्पनिक और मिथकीय संबंध एक दूसरे से उलझ से गए हैं।

ऐसे में बहुत जरुरी हो जाता है कि बच्चों/किशोरों को प्राकृतिक पर्यावरण से जोड़े रखा जाए। आज भी अगर चाँद मामा, आकाश पिता और नदी माँ होते तो वे शायद प्रकृति से भावनात्मक रूप से जुड़ पाते। क्योंकि प्रकृति जीवन से संघर्ष का सबसे अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करती है सुख–दुःख, जीतना–हारना, पाना–खोना, जन्म–मरण सभी भाव सिखाती है। जैसे–जैसे बच्चे प्राकृतिक परिवेश से दूर होते गए और कृत्रिम परिवेश का हिस्सा बनते गए उनमे संघर्ष, सहानुभूति और करुणा जैसे भाव धीरे–धीरे कम होते जा रहे हैं या समाप्त हो रहे हैं। कम आयु में ऐसी अनेक बीमारियाँ बच्चों में घर करने लगी हैं जिससे उनका मानसिक व शारीरिक स्वास्थ्य असंतुलित रहने लगा है। जबकि सदियों से सिद्ध वाक्य है कि स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क निवास करता है और स्वस्थ रहने के लिए स्वच्छ वातावरण की आवश्यकता होती है। इसमें परिवार और शिक्षण संस्थानों की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण हो जाती है कि वे बच्चों को प्रारंभ से ही प्राकृतिक और स्वाभाविक परिवेश से जुड़ना सिखाएं क्योंकि कृत्रिम बुद्धि (artificial intelligence) स्वाभाविक बुद्धि को कभी भी विस्थापित नहीं कर सकती।

ऐसी ही कुछ और घटनाओं पर भी यहाँ प्रकाश डालाना जरूरी हो जाता है। हाल ही में असम के एक नवविवाहित दंपति ने अपने विवाह समारोह के बाद एक समझौते (contract) पर हस्ताक्षर किए। इस कॉन्ट्रैक्ट के अनुसार दोनों ने कुछ शर्तें निर्धारित की जैसे महीने में केवल एक पिज्जा खाना, हमेशा घर के खाने को हां कहना, प्रतिदिन साड़ी पहनना, देर रात पार्टी करने की सहमति परंतु केवल एक दूसरे के साथ, प्रतिदिन जिम जाना, रविवार की सुबह का नाश्ता पति के द्वारा बनाया जाना, प्रत्येक पार्टी में अच्छी–अच्छी फोटो खींचना, प्रत्येक 15 दिन बाद शॉपिंग करवाना। संबंधों में इतनी कृत्रिमता और अविश्वास कि लिखित में समझौता करने की आवश्यकता अनुभव होने लगे। कुछ समय पहले भी एक महानगर में इसी तरह की घटना हुई थी जिसमे विवाह समारोह में फेरे लेते समय वर–वधु ने एक ऐसे कॉन्ट्रैक्ट की बात की जिसके अनुसार वे 6 महीने तक साथ रहेंगे अगर उनमे नहीं बनी तो वे बिना किसी कानूनी कार्यवाही के पारस्परिक सहमति से अलग हो जाएंगे। एक समय था जब विवाह को संस्कार और पवित्र बंधन माना जाता था आज वही संस्कार आधुनिक समाज में हाशिए पर खड़ा है।

दो तीन वर्ष पूर्व चीन के एक प्रोफेसर ने जीनोम–एडिटिंग टूल क्रिसपर–कैस 9 का उपयोग कर जुड़वां बच्चियों को बनाने का दावा कर चिकित्सा और अनुसंधान की दुनिया में हड़कंप मचा दिया था। उन्होंने दावा किया ये डिजाइनर बेबी संक्रमणों और कैंसर से सुरक्षित रहेंगी। बेबीक्लोन आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (एआई) तकनीक के क्षेत्र में एक नयी क्रांति है। प्राकृतिक गतिविधियों के साथ छेड़–छाड़ करना मानव जीवन के सामने किस तरह की चुनौतियाँ उत्पन्न कर सकता है या आनुवंशिक परिवर्तनों वाले शिशु आने वाली पीढ़ियों को किस तरह प्रभावित कर सकते हैं यह कहना कठिन है। वैज्ञानिकों ने बेबीक्लोन एआई तकनीक के द्वारा एक सिलिकॉन बेबी बनाने में सफलता हासिल की जिसकी जरूरते वास्तविक जीवन के बच्चे के समान हैं जैसे भूख लगने और नींद आने पर रोना और अपने अभिभावक को न पाकर असहज होना। उन्हें भी वास्तविक बच्चों की तरह अपने माता–पिता के लाड़–प्यार की जरूरत होती है। यह कैसी दुनिया उभर कर आ रही है जहाँ विवाह के लिए एक पुतला, सेक्स के लिए रोबोट और सिलिकॉन बच्चा लोगों की पसंद बन रहे हैं। एक ऐसी आभासी दुनिया जहाँ कुछ भी असली नहीं है विवाह, पति–पत्नी के संबंध और बच्चा सब कुछ नकली। इस वर्ष के प्रारंभ में तमिलनाडू के एक युवक–यवती के विवाह के लिए वर्चुअल विश्व निर्माण किया गया जिसमें वर के मृत पिता का एक वर्चुअल किरदार बनाया गया जो वर–वधु को आशीर्वाद भी दे सकते हैं। साथ ही वर–वधु एवं उनके दोस्तों व रिश्तेदारों के भी वर्चुअल अवतार बनाये गए। इस विवाह में शामिल होने के लिए वास्तविक दुनिया से वर्चुअल दुनिया में जाना पड़ेगा। कितना हास्यादपद है कि एक तरफ हम इस सत्य को स्वीकारते हैं कि जन्म और मरण पहले से निर्धारित होता है जिसने जन्म लिया है उसका मरना भी निश्चित है। दूसरी तरफ जीवित होते हुए भी मृत समाज (काल्पनिक विश्व) में सम्मिलित होने

का विकल्प चुनना भ्रम में जीना नहीं है तो क्या है। यानी मनुष्य स्वयं को भगवान बनाने में तुला है क्योंकि आध्यात्मिक संसार में मृत्यु एक अटल सत्य है लेकिन इस तकनीकी दुनिया में मृत्यु को झुठलाने वाली तकनीक भी उभार ले चुकी है। आखिर सच से भागने की कोशिश क्यों इसके कारण मानव जीवन पर पड़ने वाले प्रभावों पर चिन्तन करना अनिवार्य है। कितना बड़ा दुर्भाग्य है कि मनुष्य वास्तविक संबंधों की उपेक्षा करने और आभासी संबंधों की तलाश में वास्तविक जीवन जीना ही छोड़ने को आतुर है।

ऐसे में विवाह, परिवार, नातेदारी और समाज की परिभाषा क्या होगी। समाजशास्त्रियों को इन सबकी नयी परिभाषाओं को गढ़ना होगा। क्या वास्तव में यह समाज और परिवार के अंत की तैयारी है। क्या लोग अनौपचारिक संस्थाओं (परिवार, विवाह, नातेदारी) से इतना त्रस्त हो चुके हैं कि उनका इन संस्थाओं पर से विश्वास उठ गया है। या फिर यह संस्थाएं जिन भूमिकाओं का निर्वहन करने के लिए निर्मित की गयी थी उनका सही से निर्वहन कर पाने में असमर्थ हो गयी हैं। समाज विज्ञान के शोधार्थियों को इन मुद्दों पर शोध करने की आवशयकता है। ताकि इनके पीछे छिपे कारण–परिणाम संबंधों को ज्ञात करके उनके समाधान के प्रयास किये जा सके। अन्यथा इसमें कोई संदेह नहीं कि जल्दी ही आभासी समाज में आभासी सम्बन्धों का वर्चस्व ही स्थापित हो जायेगा। इस तरह के समाज में हो सकता है कि हम क्षणिक खुशी प्राप्त कर ले लेकिन स्थायी खुशी प्राप्त नहीं की जा सकती।

यहाँ एक बड़ा सवाल यह उठता है कि अगर कोई किसी कमी को पूरा करने के लिए इस तरह की टेक्नोलॉजी का प्रयोग करता है तो एक सीमा तक स्वीकारा भी जा सकता है जैसे कृत्रिम ह्रदय, कृत्रिम आँख, कृत्रिम हाथ–पैर इत्यादि। लेकिन वास्तविक समाज और वास्तविक संबंधों के होते हुए भी अगर व्यक्ति वर्चुअल समाज और संबंधों की ओर अग्रसर हो रहे हैं तो यह मानसिक दिवालिएपन का ही संकेत है। परिणामस्वरूप मनुष्य में एक नए प्रकार का स्किजोफ्रेनिया (एक गंभीर मानसिक रोग जिसका अर्थ है खंडित व्यक्तित्व) उभर कर आया है। साइबर स्पेस ने ऑनलाइन पर्सनालिटी और ऑफलाइन पर्सनालिटी (online personality & off line personality) के नए वर्गीकरण को उत्पन्न किया है जोकि स्किजोफ्रेनिया के नए स्वरुप को उत्पन्न करता है। यहाँ ऑनलाइन पर्सनालिटी का अर्थ उस व्यक्ति से है जो यथार्थ/वस्तविकता से बहुत दूर होता है। वे असीमित समय तक ऑनलाइन रहकर अपने बहुमूल्य समय को खर्च करते हैं और सामाजिक जीवन या कहे कि वास्तविक जीवन से पृथक होते जाते हैं। धीरे–धीरे उनका जीवन और स्वभाव इतना एकाकी हो जाता है कि वह आभासी दुनिया में अपना साथी और अपनी खुशी ढूँढ़ने लगते हैं। आश्चर्य की बात तो यह है आभासी दुनिया में अत्यधिक सक्रिय रहने वाले व्यक्ति वास्तविक जीवन में नितांत अकेलापन महसूस करते हैं ऐसा क्यों है, इसे समझने की जरुरत है। सवाल यह है कि वर्तमान समाजों की समस्याओं से बचने के लिए क्या आभासी दुनिया एक बेहतर विकल्प हो सकती है। संभवतः ऐसा नहीं हो सकता तो फिर जरुरी है कि वास्तविक समाज को ही रहने लायक बनाया जाए उसमे उत्पन्न हुयी कमियों और समस्याओं का उचित समाधान ढूँढा जाए। किसी समस्या या चुनौती से भागना किसी समस्या का हल नहीं है अपितु उनका सामूहिक रूप से समाधान करने का प्रयास करना ही एकमात्र स्थायी समाधान हो सकता है। अभी भी समय है इस टेक्नोलॉजी निर्देशित विश्व का हिस्सा बनने से खुद को रोका जा सकता है। कहते हैं न टेक्नोलॉजी को मनुष्य नियंत्रित करे तो अच्छा पर जब टेक्नोलॉजी मनुष्य को नियंत्रित करने लगे तो उसका अस्तित्व चुनौती प्राप्त करने लगता है। इसलिए तकनीकी समाज या वर्चुअल संबंधों को वास्तविक विश्व व वास्तविक संबंधों से विस्थापित करने की जरुरत है ताकि यह समाज फिर से रहने और जीने लायक बन सके। टेक्नोक्रैट पीढ़ी या स्मार्ट टेक्नोलॉजी वाली पीढ़ी को वास्तविक समाज और संबंधों से रुबरु करवाना बहुत जरुरी है अन्यथा उन्हें अवसाद, अकेलापन और निराशा के गर्त में जाने से रोकना कठिन हो जायेगा। मैडगिन, मुनरों एवं लिविंगस्टोन मानते हैं कि आज डोमेस्टिक स्पेस और डोमेस्टिक वस्तुओं में व्यापक बदलाव आया है। अब अधिकांश परिवारों में हर सदस्य के पास अपने निजी कमरें हैं या कहें कि एक ही घर में कई कमरें हैं, कई टेलीविजन, कई रेडियों, कई टेलीफोन/मोबाइल और कई कैसेट प्लेयर हैं और सभी अपने–अपने कमरों में समय बिताते हैं। एक समय था जब टेलीविजन लोगों को पास लाया था क्योंकि घरों में एक ही टेलीविजन था और अब 'नवीन डोमेस्टिक टेक्नोलॉजी' परिवार के सदस्यों को एक ही स्थान के भीतर अलग–अलग रहने की अनुमति देती है। अब कौन क्या कर रहा है, कैसे कर रहा है, क्यों कर रहा है, से सभी अनभिज्ञ रहते हैं परिणामस्वरूप परिवारों में सामूहिकता, भावनात्मकता, अपनत्व की कमी विकराल रूप लेती जा रही है।

निष्कर्ष

आज के समाज में मशीन व मनुष्य के बीच अंतर करना उतना ही कठिन है जितना पानी में से नमक को अलग करना। आज सीखने के लिए मानव अनुभवों और बुद्धि से ज्यादा जरुरी हो गया है इंटरनेट और कंप्यूटर जो हमें उतना ही सिखा सकता है

जितना हमने उसमे फीड (feed) किया है लेकिन मानव अनुभवों से सीखने की कोई सीमा नहीं है। उसके जितना नवाचारी और सृजनशील ज्ञान कोई नहीं दे सकता इसके बावजूद आज की पीढ़ी की निर्भरता इस टेक्नोलॉजिकल ज्ञान पर बढ़ गयी है। यह जानते और समझते हुए भी कि इसके कितने नकारात्मक परिणाम प्रतिदिन हमारे सामने आ रहे हैं। ऑनलाइन पढाई, ऑनलाइन ऑफिस, ऑनलाइन शोपिंग, ऑनलाइन मार्केटिंग, ऑनलाइन फिल्में, सब कुछ तो मोबाइल तक सिमट कर रह गया है। शैरी टर्कल संभवतः इसलिए कंप्यूटर को 'सेकेंड सेल्फ' की संज्ञा देते हैं। सेकेंड सेल्फ (दूसरा स्व) उस स्थिति को कहते हैं जब एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से इतना घनिष्ठ रूप से जुडा होता है कि वह उसके व्यक्तित्व की विभिन्न विशेषताओं को इस तरह से आत्मसात कर लेता है कि दोनों में कोई अंतर न लगे। और सूचना क्रांति और उपभोक्तावादी संस्कृति के उभार के बाद से ही मनुष्य मशीन में तब्दील हो गया था उसके पास अपने परिवार और अपने लिए समय नहीं था और अब ऑनलाइन रहने की मजबूरी ने उसके शरीर और दिमाग दोनों को ही बीमार कर दिया है। टेक्नोलॉजी का उपयोग तब तक ही अच्छा होता है जब तक वह हमारे सहायक के रूप में काम करे लेकिन जब यह हमे नियंत्रित करने लगती है तब न केवल मानव व्यक्तित्व को विखंडित करती है अपितु समाज, राज्य, और अन्य सभी अनौपचारिक संस्थाओं को भी विखंडित करती हैं जैसा कि वर्तमान समाज में हो रहा है।

संदर्भ

Habermas, Jurgen, 1962, The Structural Transformation of the Public Sphere, Polity Press: Cambridge, UK.

Livingstone, S. 1992, The Meaning of Domestic Technologies: A Personal Construct Analysis of Familial Gender Relations, in R. Silverstone and E. Hirsch (Eds.) Consuming Technologies, London: Routledge.

Madigan, R. and Munro, M., 1990, Ideal Homes: Gender and Domestic Architecture', in T. Putnam and C. Newton (Eds.) Household Choices, London: Futures, 25–30.

Turkle, S., 1984, The Second Self: Computers and the Human Spirit, New York: Simon & Schuster.

Corresponding Author
* **डॉ. ज्योति सिडाना,** *सहायक आचार्य (समाजशास्त्र)*
राजकीय कला कन्या महाविद्यालय, कोटा
Email-drjyotisidana@gmail.com, Mob.-7976207834